भक्ति काल

भक्ति आंदोलन का प्रारंभ

भक्ति का उल्लेख प्राचीन संस्कृत काव्य 'महाभारत' में मिलता है। वहाँ वह 'सात्वत धर्म' या 'भागवत धर्म' के रूप में एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में भी उल्लिखित है। श्रीमद्भगवत्गीता, जो महाभारत का ही एक अंश है, में भक्ति एक जीवन दर्शन, विचारधारा या भावधारा के रूप में वर्णित है। 'महाभारत' की रचना उत्तर भारत में ही हुई थी। स्पष्टतः प्राचीनकाल में भक्ति आंदोलन उत्तर भारत में प्रादुर्भूत हुआ था। कालांतर में उसका विलोप हो गया। आगे चलकर दक्षिण भारत में, जहाँ राजनीतिक-सामाजिक स्थिरता और सुव्यवस्था थी, भक्ति एक प्रबल भावधारा के रूप में पुनः प्रकट हुई। धीरे-धीरे प्रथम सहस्त्राब्दि में वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संपूर्ण दक्षिण भारत में फैल गई। 13वीं-14शती में भक्ति का यह आंदोलन उत्तर भारत में भी फैल गया। भक्ति के दक्षिण भारतीय आचार्यों ने इस भावधारा के प्रचारार्थ उत्तर भारत की यात्राएँ कीं और फिर नए शिष्य और अनुयायी बनाए। लंबे समय तक राजनीतिक बिखराव, सामंती उत्पीड़न और भेदभाव के बाद उत्तर भारत में सामान्य लोक परिवेश में अनेक तरह के बदलाव आने लगे। धीरे-धीरे जड़ें जमाती मजबूत केंद्रीय सत्ता ने कृषि, व्यापार और उद्योग के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूँजीवादी संबंधों का प्रसार हुआ। नए-नए बाजारों और मंडियों का विकास होने लगा। सामंती व्यवस्था में जो वर्ण और जातियाँ पिछड़ी हुई थीं उनमें अभूतपूर्व आर्थिक सुधार हुए।

उपर्युक्त बातें उस सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति को स्पष्ट करती हैं जिसमें तथाकथित नीची कही जानेवाली जातियों को सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से ऊपर उठने के लिए एक नया मार्ग ढूँढने की ओर प्रवृत्त किया। लेकिन यह काम किसी सुसंगत विचारधारा के बिना संभव नहीं था। रामानुजाचार्य ने उस कमी को पूरा किया। शंकराचार्य की तरह रामानुजाचार्य ने जगत को मिथ्या नहीं कहा, उन्होंने उसे वास्तविक माना। उनके इस मत को विशिष्टाद्वैत के रूप में जाना जाता है। रामानुजाचार्य के अनुसार इस

जगत को वास्तविक मानकर उसे महत्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता एवं करुणा है । जगत मिथ्या नहीं, वास्तविक है, यह लौकिकता की विश्वबोधात्मक या दार्शनिक स्वीकृति है । रामानुजाचार्य से पहले भी भक्ति एक प्रवृत्ति के रूप में थी, लेकिन वह साधनापद्धति मात्र थी, ऐतिहासिक आंदोलन के रूप में तो वह अब विकसित हुई । ऐतिहासिक स्थितियों की अनुकूलता में यह प्रवृत्ति व्यापक एवं तीव्र होकर धार्मिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक आंदोलन बन गई । रामानुजाचार्य ने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) के आधार पर दर्शन के स्तर पर भक्ति को प्रतिष्ठित किया । उन्होंने इस आंदोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया । इसके बिना भक्ति आंदोलन का रूप नहीं ले सकती थी ।

आगे चलकर रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में रामानंद (1300 ई० के आसपास) हुए । इनके विषय में कहा जाता है 'भक्ति द्रविड़ ऊपजी, लाए रामानंद' । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निष्कर्ष में भी यही स्वर है - ''भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलाने के लिए पूरा स्थान मिला ।'' यहाँ शुक्ल जी ने भक्ति का स्रोत दक्षिण भारत में माना है, किंतु उसके विकास और प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया है । अनुकूल परिस्थितियों से उनका तात्पर्य तत्कालीन सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से है । उनके अनुसार - ''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया । ....अपने गौरव पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त मार्ग ही क्या था ।''

परंतु हजारी प्रसाद द्विवेदी इस मत को आंशिक रूप में ही स्वीकार करते हैं । उनका जोर सिद्धों-नाथों की परंपरा पर अधिक है । नाथपंथियों, सिद्धों की बानी में हृदय के प्रकृत भावों - प्रेम, भक्ति आदि का अभाव था । अशिक्षित जनता उनके प्रभाव में थी । दूसरी ओर विद्वान ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों, गीता आदि पर भाष्य लिखकर भक्तिमार्ग के सिद्धांत पक्ष को विकसित करते रहे । कालांतर में ये शास्त्रकार लगातार लोक की ओर झुकते चले गए । भक्त कवियों ने भी लोकभाषा का चुनाव किया । द्विवेदी जी शास्त्र के स्थान पर विचारसंपन्न जन का लोक की ओर झुकाव दिखाते हुए इसे भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास मानते हैं । उन्होंने भक्ति आंदोलन को इसी स्वाभाविक विकास के रूप में समझने का प्रस्ताव किया है ।

इस तरह 13वीं-14वीं शताब्दी तक आते-आते उत्तर भारत में अनुकूल परिस्थितियाँ उपस्थित हुईं और भक्ति का आंदोलनकारी स्वरूप सामने आया । इसके कारणों की पड़ताल करते हुए शुक्ल जी ने तात्कालिक परिस्थितियों और दक्षिण की भक्ति परंपरा को महत्त्वपूर्ण माना है; जबकि द्विवेदी जी ने तात्कालिक परिस्थिति और सिद्धों-नाथों की तंत्र-योग-निष्ठ साधना और विचारधारा को, जिसमें पाखंड और सामाजिक विभेद का प्रबल विरोध था ।

भक्ति के संप्रदाय

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ देखने को मिलती हैं - निर्गुण धारा और सगुण धारा । निर्गुण का शाब्दिक अर्थ गुणरहित है । लेकिन संत साहित्य में निर्गुण गुणातीत की ओर संकेत करता है । निर्गुण

यहाँ किसी निषेधात्मक सत्ता का वाचक न होकर उस परब्रह्म के लिए है जो सत्व, रजस और तमस तीनों गुणों से परे है, जबकि सगुण मतवादियों के इष्ट भगवान श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं । वे अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं और अपनी लीला से भक्तों के चित्त का रंजन करते हैं । अतः सगुण मतवाद में विष्णु के 24 अवतारों में से अनेक की उपासना होती है जिनमें राम और कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकाराधित हैं ।

भक्ति के अनेक आचार्य हुए हैं जिनके द्वारा विभिन्न भक्ति संप्रदायों का प्रवर्तन हुआ । उनमें से चार प्रमुख संप्रदायों और उनके आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

श्री संप्रदाय

श्री संप्रदाय के संस्थापक आचार्य रामानुज हैं । इन्होंने अवतारी विष्णु को अपनी भक्ति में उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की । विशिष्टाद्वैतवाद शंकर के अद्वैतवाद का परिष्कार है । इसके अनुसार पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष हैं । भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे पाँच रूप धारण करते हैं । इन्हीं में अर्चावतार राम की गणना होती है । इनकी भक्ति से ही मुक्ति संभव है ।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए । इनके गुरु राघवानंद थे । रामानंद को आकाशधर्मा गुरु माना जाता है । इन्होंने अवर्ण–सवर्ण, स्त्री–पुरुष, राजा–रंक, सभी को शिष्य बनाया; क्योंकि ये श्रेष्ठता का आधार भक्ति को मानते थे, जाति को नहीं । इनकी शिष्य परंपरा में रैदास, कबीर, धन्ना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, पद्मावती आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । इसी परंपरा में गोस्वामी तुलसीदास भी हुए ।

ब्रह्म संप्रदाय

इस संप्रदाय का प्रवर्तन मध्वाचार्य के द्वारा हुआ । इनका जन्म दक्षिण भारत के बेलिग्राम नामक स्थान में हुआ था । वेदांत में पारंगत होने पर भी संन्यास लेने पर इनका नाम आनंदतीर्थ रखा गया । इन्होंने अद्वैतवाद का घोर विरोध किया तथा द्वैतवाद का प्रतिपादन किया । द्वैतवाद के अनुसार भगवान विष्णु आठ गुणों से युक्त सर्वोच्च तत्त्व हैं । जगत सत्य है; ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है । समस्त जीव हरि के अनुचर हैं । ऐसी मान्यता है कि महाप्रभु चैतन्य इसी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे किंतु आगे उनका स्वतंत्र मत और संप्रदाय विकसित हो गया ।

रुद्र संप्रदाय

विष्णुस्वामी के द्वारा प्रवर्तित यह संप्रदाय महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के रूप में ही हिंदी में प्रसिद्ध हुआ । वल्लभाचार्य का जोर कृष्ण की उपासना पर था, जिसके लिए उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति ग्रहण की । सूरदास एवं अष्टछाप के कवि इसी संप्रदाय से संबद्ध हैं । इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद है ।

सनकादिक संप्रदाय

यह संप्रदाय निम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित है । कुछ विद्वान इस संप्रदाय को वैष्णव भक्ति का

प्राचीनतम संप्रदाय मानते हैं और निंबार्क को उसका पुनरुद्धारक मानते हैं । इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत 'भेदाभेदवाद' या 'द्वैताद्वैतवाद' है । राधा-कृष्ण की युगलोपासना का विधान इस संप्रदाय में है । इसके अंतर्गत श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं के द्वारा भक्ति भाव की अभिव्यक्ति की जाती है । स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय इसी की एक शाखा है।

सूफी साधक

इन परंपरागत प्रमुख भारतीय भक्ति संप्रदायों के अतिरिक्त इस्लाम के साथ भारत में सूफी मत का भी आगमन हुआ था । सूफी मत या 'तसव्वुफ' से संबंधित अनेक सूफी संप्रदाय भारत में आए और उन्होंने अपनी खानकाहें (मठ) देश के अनेक क्षेत्रों में स्थापित कीं । भारत में उनकी अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैल चलीं । सूफी मत मूलत: प्रेममार्गी था । मानव हृदय में निहित प्रेम के द्वारा यह अल्लाह (परमात्मा) को प्राप्त करने का निर्देश करता था । अनेक सूफी संतों ने अपार लोकप्रियता अर्जित की । भक्ति मूलत: प्रेम ही है, वह प्रेम का दिव्य स्वरूप है । सूफी मत में 'इश्क हकीकी' भी ईश्वरीय या दिव्य प्रेम है । स्वभावत: सूफी मत भक्ति आंदोलन का प्रमुख अंग है ।

भक्ति आंदोलन की व्यापकता अखिल भारतीय थी । इसमें निहित मानवीय दृष्टिकोण ने हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमानों को भी आकर्षित किया । भावुक मुसलमानों द्वारा प्रवर्तित 'प्रेम की पीर' की यह भावधारा अपनी विकास प्रक्रिया के दौरान हर उदार मानवीय हृदय को अपने में समेटती चली गई । उसने यह सिद्ध कर दिया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है ।' हालाँकि सूफी इस्लाम मतानुयायी हैं और इस्लाम एकेश्वरवादी है; फिर भी सूफी संतों ने 'अनलहक' अर्थात 'मैं ब्रह्म हूँ' की घोषणा की । यह बात अद्वैतवाद के करीब है । सूफी साधना के अनुसार मनुष्य के चार विभाग हैं - 1. नफ्स (इंद्रिय), 2. अक्ल (बुद्धि या माया), 3. कल्ब (हृदय), 4. रूह (आत्मा) । यह साधना नफ्स और अक्ल को दबाकर कल्ब की साधना से रूह की प्राप्ति पर बल देती है । हृदयरूपी दर्पण में परमसत्ता का प्रतिबिंब आभासित होता है । यह दर्पण जितना ही निर्मल होगा, रूप उतना ही स्पष्ट होगा। तात्पर्य यह कि सूफी साधना भी हृदय की साधना है । इसलिए वह भक्ति ही है ।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से होती हुई प्रेमाख्यानक काव्यों की एक परंपरा पहले से चली आ रही थी । हिंदी के सूफी कवियों ने इसी परंपरा में अपनी भावधारा मिला दी और सूफी अभिप्रायों को उभारते हुए नए ढंग के प्रेमाख्यानक काव्य लिखे । इन काव्यों में प्रेमकथाएँ प्राय: लोकप्रचलित और परंपरागत ही होती थीं किंतु उनमें सूफी संदेशों और अभिप्रायों के पुट होते थे ।

मुल्ला दाउद को हिंदी का प्रथम सूफी कवि माना जाता है । 'चंदायन' (1379) इनकी प्रसिद्ध रचना है । इसी से सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का आरंभ हुआ । सूफी कवियों की यह परंपरा 19वीं शती तक मिलती है । भारत में सूफी मत के चार प्रमुख संप्रदाय हैं - 1. चिश्ती, 2. सोहरावर्दी, 3. कादरी और 4. नक्शबंदी । सूफी मुसलमान थे, लेकिन उन्होंने हिंदू घरों में प्रचलित कथा-कहानियों को अपने काव्य का आधार बनाया । हिंदी का सूफी काव्य अवधी भाषा में है । उसकी भाषा और वर्णना में भारतीय संस्कृति रची-बसी है । 'प्रेम की पीर' की व्यंजना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है ।

उपर्युक्त भक्ति संप्रदायों के अतिरिक्त भी भक्ति के कई अन्य संप्रदाय हैं, किंतु भक्ति का लक्षण भगवद्‌विषयक रति, अनन्यता, पूर्ण समर्पण सब में मिलता है । सदाचार, परदुखकातरता, प्राणिमात्र पर करुणा, समभाव, अनावश्यक लौकिक संपत्ति के प्रति उपेक्षा, अहिंसा आदि का भाव सभी प्रकार के संप्रदायों के भक्तों में पाया जाता है ।

भाषा, काव्य रूप और छंद

भक्तिकालीन हिंदी साहित्य मुख्य रूप से ब्रजभाषा और अवधी में रचा गया । 14वीं शती में दिल्ली में केंद्रीय सत्ता स्थापित होने से सड़कें आदि बड़े पैमाने पर बनीं, व्यापार में बढ़ोत्तरी हुई तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों के सूत्र एक दूसरे से जुड़ने लगे । सैनिकों, व्यापारियों और साधु-संतों के माध्यम से भाषाएँ भी प्रसार पाने लगीं । परिणामतः पूरे देश में मध्यदेश की प्रधान काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रचार-प्रसार हुआ । नामदेव ने मराठी, नरसी मेहता ने गुजराती और नानकदेव ने पंजाबी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी रचनाएँ कीं । कृष्णलीला और कृष्णकथा का केंद्र ब्रज था । ब्रजभाषा वहीं की बोली थी। इस कारण वह कृष्ण भक्ति की काव्यभाषा बन गई। अवधी के साथ भी वही हुआ । राम की जन्मभूमि अयोध्या के कारण वहाँ की भाषा अवधी रामभक्तों के लिए महत्त्वपूर्ण हो गई । लेकिन ब्रजभाषा का प्रभाव उसके माधुर्य, कोमलता और संगीत के कारण व्यापक रहा । बंगाल, असम आदि में ब्रजभाषा प्रभावित बंगला-असमिया को 'ब्रजबुलि' कहा गया । सुदूर दक्षिण भारत तक ब्रजभाषा का प्रसार हुआ ।

भक्तिकालीन साहित्य में खड़ी बोली की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं मिलती । खड़ी बोली का मिश्रित रूप सधुक्कड़ी अवश्य प्रचलन में था, जो वस्तुतः पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, ब्रज और कहीं-कहीं अवधी का भी पंचमेल है ।

भक्तिकाल में अनेक साहित्यिक विधाओं और छंदों का प्रचलन था, किंतु गेयपद और दोहा-चौपाई में कड़वकबद्ध रचना-रूपों की प्रधानता थी । हिंदी में गेयपदों की परंपरा का आरंभ सिद्धों के द्वारा हुआ। आगे नाथपंथी योगियों तथा नामदेव, नानक, कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई आदि ने गेयपदों का विकास किया। गेयपदों में काव्य और संगीत एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं । दोहा-चौपाई की परंपरा भी सरहपा से मिलने लगती है। दोहा-चौपाई की प्रकृति प्रबंध काव्य के लिए उपयुक्त मानी जाती है और अवधी भाषा में इसके सबसे ज्यादा प्रयोग हुए ।

इसके अतिरिक्त छप्पय, सवैया, कवित्त, बरवै, हरिगीतिका आदि भक्ति काव्य के बहुप्रयुक्त छंद हैं । तुलसीदास के यहाँ मध्यकाल में प्रचलित प्रायः मंगलकाव्य, नहछू, कलेउ, सोहर जैसे लोककाव्य रूपों का भी उपयोग हुआ है । नहछू, कलेउ आदि विवाह के समय गाए जाने वाले और सोहर पुत्रजन्म के समय गाया जानेवाला गीत है ।

निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य धारा

भक्ति काल में भक्ति की दो धाराएँ प्रवहमान थीं, निर्गुण धारा और सगुण धारा । इन दोनों की दो-दो शाखाएँ हैं । ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्य की शाखाएँ हैं जबकि रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा सगुण काव्य की शाखाएँ हैं । ज्ञानमार्ग की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर ने की थी । उन्होंने निर्गुण

ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन 'ज्ञान' को बताया था । ज्ञान वस्तुतः अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी भक्तिमार्गीय पद्धति या साधनों के सिर्फ सरलता और सत्यनिष्ठा के बल पर उत्पन्न होता है । इसे ही 'सहज ज्ञान' कहा गया तथा संत कबीर ने इसे 'ब्रह्मगियान' कहा है । इस धारा के प्रमुख कवियों में कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब आदि का नाम आता है ।

कबीर (1399–1518)

बाल्यावस्था में ही कबीर के भीतर भक्ति की प्रवृत्ति पनप चुकी थी । प्रसिद्ध है कि रामानंद उनके गुरु थे । कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे । आत्म-चिंतन एवं लोकनिरीक्षण से जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, उसे ही निर्भयतापूर्वक अपनी साखियों और पदों में अभिव्यक्त किया । वर्णाश्रम धर्म में प्रचलित कुरीतियों और लोक में प्रचलित अपधर्म को कबीर ने निशाने पर लिया । वे ऐसे कर्मयोगी थे जो अंधविश्वासों की खाई पाटने के लिए अपना घर जलाने को सदा तैयार रहते थे । उनकी कथनी और करनी में जबरदस्त एकता थी ।

उनकी कविता में छंद, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि गौण हैं और लोकमंगल की चिंता प्रधान है । इनकी वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से है । बीजक के तीन भाग हैं– सबद में गेयपद हैं, रमैनी चौपाई तथा साखी दोहा छंद में हैं । सिखों के 'गुरु ग्रंथ साहब' में भी कबीर के नाम से 'पद' तथा 'सलोकु' संकलित हैं । कबीर की अभिव्यंजना शैली बहुत सशक्त थी । उनकी भाषा अनेक बोलियों का मिश्रण है । इस मिश्रित भाषा को सधुक्कड़ी या पंचमेल कहा गया । कबीर के काव्य में प्रतीक योजना का भी सुंदर निर्वाह हुआ है ।

रैदास (1388–1518)

कबीर की भाँति रैदास का बल भी काव्य और कलापक्ष की अपेक्षा भक्ति पर अधिक रहा है । उनकी कविताओं में सामाजिक विषमता के प्रति मृदु विरोध है । उन्होंने वर्णवादी व्यवस्था की असमानता के प्रति असंतोष प्रकट किया है । रैदास के पद गुरुग्रंथ साहब में संकलित हैं और कुछ फुटकल पद 'सि...नों' में । उनकी भक्ति का स्वरूप निर्गुण है, लेकिन कबीर जैसा ... में नहीं है । वे ...नी कविता में अत्यंत विनम्र और निरीह हैं । उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थया... ... विधानों का विरोध कर आभ्यंतरिक साधना पर बल दिया है । अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सरल व्यावहारिक ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है । उपमा तथा रूपक अलंकार रैदास ... [illegible]

संत रैदास रामानंद के बारह शिष्यों में एक हैं । अनन्यता, भागवत प्रेम, दैन्य, आत्मनिवेदन और सरलहृदयता इनकी रचनाओं की विशेषता है । एक उदाहरण देखें –

> अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी ।
> प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी ।
> प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा ।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती ।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा ।

गुरु नानकदेव (1469-1538)

नानकदेव को सिख पंथ के प्रवर्तक गुरु के रूप में जाना जाता है । इनका जन्म तलवंडी ग्राम, जिला लाहौर में हुआ था । इनका जन्म स्थान अब ननकाना साहब के नाम से प्रख्यात है और पाकिस्तान में पड़ता है । बाल्यावस्था में इन्हें संस्कृत, फारसी, पंजाबी एवं हिंदी की शिक्षा प्राप्त हुई । ये आरंभ से ही आत्मचिंतन, ईश्वर-भक्ति और संत सेवा की ओर उन्मुख रहे । इनका झुकाव ऐसी उपासना पद्धति की तरफ था, जो सांप्रदायिक न हो । कबीर दास द्वारा प्रवर्तित 'निर्गुण संतमत' इसी प्रवृत्ति का था । अतः कबीर की भाँति धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधनों तथा अनाचारों के प्रति इन्होंने विरोध का स्वर उठाया । इनके काव्य में निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति भावना विद्यमान है, साथ ही ये अन्य धार्मिक विचारधाराओं के लिए भी श्रद्धा भाव रखते थे ।

इनकी बानियों का संग्रह 'आदिग्रंथ' के महला नामक खंड में हुआ है । इनमें 'शब्द' और 'सलोकु' के साथ, 'जपुजी', 'आसादीवार', 'रहिरास' एवं 'सोहिला' का भी संग्रह है । इनकी रचनाओं का अधिकांश पंजाबी में है किंतु कहीं-कहीं ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रयोग भी मिलता है ।

दादूदयाल (1544-1603)

सिद्धांततः दादू कबीरमार्गी थे, लेकिन उनका एक स्वतंत्र पंथ भी था जो दादूपंथ के नाम से विख्यात है । दादूपंथी इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में मानते हैं । इनकी मृत्यु राजस्थान प्रांत के नराणा गाँव में हुई । दादू द्वारा प्रवर्तित 'दादूपंथ' 'परम ब्रह्म संप्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है । इन्होंने सगुण और निर्गुण की बौद्धिक मीमांसा में न पड़कर निर्गुण भक्त होने पर भी ईश्वर के सगुण रूप को मान्यता दी है । इनकी कविता प्रेमभाव को अभिव्यक्त करती है । यह प्रेम निर्गुण निराकार ईश्वर के प्रति है । दादू की रचनाओं का संग्रह इनके दो शिष्यों संतदास और जगन्नाथ दास ने 'हरडेवाणी' नाम से किया था ।

संत सुंदरदास (1596-1689)

संत सुंदरदास दादूदयाल के शिष्यों में से एक थे । इनका जन्म जयपुर के निकट द्यौसा नामक स्थान में हुआ था और मृत्यु सांगानेर में हुई । ये संत कवियों में सर्वाधिक शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे । इन्हें देशाटन बहुत प्रिय था । भ्रमण के समय ये दादू के सिद्धांतों का प्रचार करते तथा काव्य रचना करते । इनके द्वारा रचित बयालीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'सुंदर विलाप' है । समाज की रीति, नीति तथा भक्ति पर इन्होंने विनोदपूर्ण उक्तियाँ कहीं हैं । ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्य निर्गुण संतों में रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जयनाथ, सिंगा जी, बाबा लाल, बावरी साहिबा, सहजोबाई, दयाबाई, बेनी, पीपा, कमाल आदि उल्लेखनीय हैं ।

निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा

लोकप्रचलित प्रेमकथाओं को लेकर छंदोबद्ध काव्य लिखने की परिपाटी प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य से ही हिंदी में प्रवाहित हुई । प्रायः ये कथाएँ परंपरागत रूप में प्राप्त होती थीं । इनमें जनश्रुति और इतिहास दोनों का लोकपोषित रूप होता था । कुछ कथाएँ काल्पनिक भी होती थीं, किंतु उनमें भी प्राणतत्त्व लोकमान्यताओं और लोकविश्वासों से बना होता था । हिंदी के सूफी कवियों ने इसी परंपरागत कथाकाव्य के प्रवाह को अपनाया और अपने काव्य रचे । हिंदी के सूफी कवि प्रायः भावुक, उदारमना भारतीय मुसलमान थे जिन्होंने हिंदुओं के घर-घर में परंपरा से प्रचलित प्रेम कहानियों को उदार मानवतावादी दृष्टि से अपनाकर ऐसे काव्य रचे जिनसे धर्म-संप्रदाय, जाति-लिंग आदि के विभेद पीछे छूट गए और संवेदना के धरातल पर प्रेम के दिव्य स्वरूप की प्रतिष्ठा हो गई । इन कवियों का उद्देश्य मानव हृदय को झंकृत करना था जो बुनियादी रूप से एक और अखंड है । हिंदी के कुछ प्रमुख सूफी कवि हैं :

मुल्ला दाउद

मुल्ला दाउद ने अपने प्रमुख काव्य 'चंदायन' की रचना चौदहवीं शती के अंतिम वर्षों में की थी। चंदायन पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना तथा उसकी प्रेयसी चंदा की प्रेमकथा पर आधारित है । परिष्कृत अवधी में लिखा गया यह काव्य इस तथ्य को सूचित करता है कि 14वीं शती तक अवधी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी ।

कुतुबन

कुतुबन का काव्य 'मृगावती' चौपाई-दोहे की कड़बक शैली में रचा गया काव्य है । इसकी रचना 16वीं शती के आरंभ में हुई थी । इसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारी की कन्या मृगावती की जन्मांतरव्यापी प्रेमकथा वर्णित है. ।

मंझन

16वीं शती में मंझन ने अपने काव्य 'मधुमालती' की रचना की । मधुमालती में कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र राजकुमार मनोहर का महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के साथ प्रेम की कथा वर्णित है । प्रेम की विरह व्यथा के साथ इस काव्य में आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण प्रभावशाली रूप में हुआ है ।

मलिक मुहम्मद जायसी (1495-1548)

जायसी हिंदी की सूफी काव्य परंपरा के प्रतिनिधि और प्रधान कवि माने जाते हैं । इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं किंतु उनमें 'पदमावत' मुख्य है । 'पदमावत' इनके अक्षय यश का आधार है । 16वीं शती में लिखे गए इस काव्य में चित्तौड़ के राजा रतनसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पदमावती की प्रेमकथा वर्णित है । सूफी काव्य परंपरा की इस प्रौढ़ कृति में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय है । सूफी अभिप्रायों का इस काव्य में ऐसा सहज विन्यास हुआ है कि प्रेमकथा और काव्य का प्रवाह तथा स्वाभाविकता बाधित नहीं होती । पदमावत काव्य और इसकी कथा का अंत त्रासद है किंतु त्रासदी में उत्सर्गमय प्रेम का अमर संदेश छिपा हुआ है ।

हिंदी के इन प्रमुख सूफी कवियों के अतिरिक्त इस काव्यधारा में 'चित्रावली' के कवि उसमान, 'ज्ञानदीप' के कवि शेख नबी, 'हंस जवाहिर' के कवि कासिम शाह, 'इंद्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के कवि नूर मुहम्मद आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हो चुके हैं ।

निर्गुण काव्य की सामान्य विशेषताएँ

निर्गुण काव्य की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा दोनों का आधार निर्गुण मत है । इसमें मानवीय भावनाओं का आलंबन परम सत्ता है, लेकिन यह परम सत्ता निराकार और गुणातीत है; यह लीलावाद और अवतारवाद के घेरे से भी मुक्त है । ज्ञानमार्गी कबीर के यहाँ ज्ञान एवं अंतस्साधना पर जोर है लेकिन प्रेम की उत्कटता कम तीव्र नहीं है । उनके काव्य में निर्गुण मतवाद का विश्वबोध स्पष्ट है । सृष्टि की उत्पत्ति, नाश, जन्म, मृत्यु, नाड़ीचक्र, कुंडलिनी आदि संबंधी अनेक बातें उन्होंने की हैं । कबीर ज्ञान की आँधी की शक्ति से सुपरिचित हैं । इस धारा से संबंधित अधिकांश कवि तथाकथित निम्न जातियों से हैं । वर्णव्यवस्था की पीड़ा उनके लिए स्वानुभूत है । अतः उनके काव्य में वर्णव्यवस्था पर तीव्र प्रहार दिखाई पड़ता है । इन लोगों ने नाथपंथी योगियों की अंतस्साधना के साथ उनके दुरूह प्रतीक तथा उलटबाँसी का प्रभाव भी ग्रहण किया है । ज्ञानाश्रयी धारा के कवियों ने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा है । उन्होंने फुटकर दोहे, चौपाई, गेयपद लिखते हुए कुछ लोक प्रचलित छंदों में अपनी बात कही है ।

प्रेमाश्रयी धारा के कवियों ने इस्लाम के सूफी मत का प्रभाव ग्रहण किया है और अधिकतर प्रबंध काव्य ही रचे हैं । इस धारा के कवियों ने प्रेम को प्रधानता दी है । प्रेम में उत्कट विरह व्यंजना और प्रतीकात्मकता इस धारा की अन्यतम विशेषता है । सूफी कवियों को 'प्रेम की पीर' या प्रेमाश्रयी धारा का कवि कहे जाने के पीछे यही कारण है । इस धारा के कवियों की भाषा अवधी है । ये काव्य चौपाई-दोहे की कड़वक शैली में हैं ।

सगुण रामभक्ति शाखा

सगुण रामभक्ति शाखा के कवियों का संबंध रामानंद से है । इन्हें रामकाव्य परंपरा की भावधारा और चिंतन का मेरुदंड कहा जाता है । भक्ति के लिए रामानंद ने वर्णाश्रम व्यवस्था को व्यर्थ बताया । उन्होंने भक्ति को सभी प्रकार की संकीर्णता से दूर करके इतना व्यापक बना दिया कि उसमें गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, निर्गुण-सगुण, सवर्ण-अवर्ण, हिंदू-मुसलमान सभी आ गए । रामानंद ने शास्त्र परंपरा और संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक जागरण और लोक कल्याण के लिए लोकभाषा में काव्य-सृजन को महत्त्व दिया । इस परंपरा के कवियों में तुलसीदास का नाम सबसे ऊपर है ।

गोस्वामी तुलसीदास (1543–1623)

गोस्वामी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था । इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ । कभी अत्यधिक आसक्ति से खीझकर इनकी पत्नी ने इनकी मधुर भर्त्सना करते हुए कहा था – 'लाज न आई आपको दौरे आए साथ' । इस भर्त्सना ने इन्हें लौकिक विषयों से विमुख कर प्रभु-प्रेम की ओर उन्मुख कर दिया ।

तुलसीदास द्वारा रचित बारह ग्रंथ प्रामाणिक माने गए हैं । दोहावली, कवित्त रामायण (कवितावली), गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकी मंगल, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपनी और श्रीकृष्णगीतावली ।

गोस्वामी जी की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है – भाव-वैविध्य और रूप-वैविध्य रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विश्रृंखलित समाज को केंद्रित करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है । तुलसीदास की भक्ति भावना में रहस्यमयता नहीं है । वह सीधी, सरल एवं सहजसाध्य है । उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं और सभी के लिए सुलभ हैं ।

निगम आगम, साहब सुगम राम साँचिली चाह ।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबहि जग माह ।।

गोस्वामी जी की शैली में भी वैविध्य है, जो भाव-वैविध्य के अनुरूप है । उन्होंने अपनी रचनाओं में वीरगाथा की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति पद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, नीतिकाव्यों की सूक्ति पद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति आदि सभी काव्य शैलियों का सफल प्रयोग किया है । प्रबंध सौष्ठव, चरित्र चित्रण, प्रकृति वर्णन, अलंकार विधान, भाषा और छंदप्रयोग की दृष्टि से गोस्वामी जी अद्वितीय हैं । उक्ति वैचित्र्य उनकी प्रमुख विशेषता है ।

तुलसीदास ने ब्रजभाषा और अवधी दोनों भाषाओं में लिखा है । उनकी अवधी संस्कृतनिष्ठ है । अवधी शब्दों में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग उन्होंने इस ढंग से किया है कि पूरी पदावली अवधी के ध्वनि प्रवाह में ढल जाती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि तुलसीदास वर्णानुप्रास के अद्भुत कवि हैं और उनकी नाद योजना उनकी काव्य कला की महत्त्वपूर्ण विशेषता है ।

नाभादास

नाभादास भी रामानंद की शिष्य परंपरा से आते हैं । इनकी उपस्थिति सन् 1575 के आसपास मानी जाती है । ये तुलसीदास के समकालीन रामभक्त कवियों में अतिविशिष्ट हैं । इन्होंने भक्तमाल परंपरा का सूत्रपात किया और अभी तक उपलब्ध भक्तमालों में सर्वश्रेष्ठ 'भक्तमाल' हिंदी को दिया । नाभादास ने इस ग्रंथ की रचना 1585 ई० के आसपास की । प्रियादास के द्वारा 1712 ई० में इसकी टीका लिखी गई । इसमें 200 भक्तों के चरित 316 छप्पयों में वर्णित हैं । 'भक्तमाल' के अतिरिक्त इन्होंने 'अष्टयाम' की भी रचना की ।

नाभादास संस्कृत काव्यशास्त्र और छंद शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे । इन्होंने अपनी समास शैली का परिचय देते हुए 'भक्तमाल' में जिन भक्तों का परिचय लिखा है; उनकी रचना शैली, काव्य कला, उपासना पद्धति, विशिष्टता आदि को एक ही छप्पय में सूत्र शैली में समाविष्ट कर दिया है । यह ग्रंथ ब्रजभाषा में है ।

तुलसीदास और नाभादास के अतिरिक्त रामभक्ति शाखा के अन्य उल्लेखनीय कवियों में प्राणचंद चौहान एवं हृदय राम प्रमुख हैं । 'रामचंद्रिका' के कारण केशवदास को भी कुछ लोगों ने रामभक्ति शाखा का कवि माना है । हालाँकि केशवदास का महत्त्व उनके आचार्यत्व में ही है । अत: उन्हें रीतिकाल के कवि के रूप में ही याद किया जाना चाहिए ।

सगुण कृष्णभक्ति शाखा

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य के दार्शनिक चिंतन से कृष्ण भक्ति धारा को एक आधार मिला । देशाटन, जन संपर्क और शास्त्रार्थ के द्वारा उन्होंने इस भक्ति का प्रचार किया । उनके अनुसार यह सारी सृष्टि भगवत लीला के लिए आत्मकृति है । अर्थात् भगवान की लीला के लिए उनके द्वारा ही बनाई गई सृष्टि है । जीव ब्रह्म का अंश है और वह तीन प्रकार का होता है - 1. प्रवाह जीव 2. मर्यादा जीव और 3. पुष्टि जीव । प्रवाह जीव सांसारिक प्रवाह में पड़े रहते हैं । मर्यादा जीव विधि-निषेध का पालन करते हैं और पुष्टि जीव भगवान का अनुग्रह प्राप्त करते हैं । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के लिए प्रेम तत्त्व को महत्त्व दिया है इसलिए पुष्टिमार्गीय भक्ति को 'प्रेमा भक्ति' भी कहते हैं । कृष्णभक्ति शाखा में सर्वप्रथम 'अष्टछाप' के कवियों की गणना होती है । अष्टछाप में आठ कवि हैं । इनमें चार क्रमश: वल्लभाचार्य के शिष्य हैं और बाकी चार उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के । ये निम्नांकित हैं - कुंभनदास, परमानंददास, सूरदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ।

सूरदास (1478-1583)

सूरदास का जन्म 15वीं शती के अंतिम वर्षों में हुआ था । ब्रज के गउघाट में श्री वल्लभाचार्य से उनका साक्षात्कार हुआ था । वल्लभाचार्य से उपदेश पाकर वे श्रीकृष्ण के लीला विषयक पदों की रचना करने लगे । पहले सूर के भक्ति विषयक पद विनय और दैन्य भाव के होते थे । श्री वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर उनके पद वात्सल्य और माधुर्य भाव के होने लगे । सूरदास द्वारा रचित पुस्तकों में 'सूरसागर', 'साहित्यलहरी' आदि प्रमुख हैं । 'सूरसागर' उनकी श्रेष्ठ कृति है । सूरसागर की रचना 'भागवत' की पद्धति पर द्वादश स्कंधों में हुई है । 'साहित्यलहरी' सूरदास के सुप्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है । इसमें अर्थगोपन की शैली में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है । अलंकार निरूपण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है ।

ब्रजभाषा में गीतिकाव्य की परंपरा को सूरदास ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । कविता, संगीत, नाट्य, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं का एकत्र समाहार उनके काव्य में है । ब्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से उठाकर उन्होंने नगर और ग्राम के संधिस्थल पर ला बिठाया । उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है, फिर भी वह सुगम है । संस्कृत और फारसी-अरबी शब्दों के साथ ब्रजभाषा की माधुरी सूर की भाषा शैली में सजीव विद्यमान है । अवधी और पूर्वी हिंदी के शब्द भी उनकी भाषा में हैं ।

कृष्ण भक्ति सूर-काव्य का मुख्य विषय है । 'भागवत' के आधार पर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन किया है । सूरसागर में उन्होंने श्रीकृष्ण के शैशव और कैशोर वय की विविध लीलाओं को स्थान दिया है, इनमें उनकी अंतरात्मा गहरी अनुभूति तक उतर सकी है । बालक की विविध

चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ास्थल, मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के श्रेष्ठतम कवि हैं । भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग और वियोग पक्ष का मार्मिक चित्रण सूर के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है । वियोग के संदर्भ में भ्रमरगीत प्रसंग सूर की काव्य कला का उत्कृष्ट निदर्शन है ।

नंददास (1533-1586)

नंददास का जन्म उत्तर प्रदेश के सोरों (सूकर क्षेत्र) के रामपुर गाँव में हुआ था । ये सूरदास के समकालीन और अष्टछाप के कवियों में से थे । काव्य-सौष्ठव और भाषा की प्रांजलता की दृष्टि से इनका स्थान सूरदास के बाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है - 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' । इनकी कृतियों में - 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांत पंचाध्यायी', 'दशम स्कंध भाषा' आदि प्रमुख हैं । रासपंचाध्यायी इनकी श्रेष्ठ कृति मानी जाती है । यह काव्य लौकिक गोपी प्रेम और आध्यात्मिक कृष्ण भक्ति का समन्वित विधान करता है । नंददास की रचनाएँ परिमार्जित ब्रजभाषा में हैं । संगीत प्रवीण होने के कारण शब्दों के चयन में लय, स्वर आदि का ध्यान रखने से उनके काव्य में श्रुतिमधुर, प्रांजलता, सांगीतिकता और प्रवाह की सृष्टि हुई है ।

कृष्णदास (1496-1578)

कृष्णदास का जन्म अहमदाबाद के चिलोतरा गाँव में हुआ था । कृष्णदास काव्य और संगीत के मर्मज्ञ थे । उन्होंने बाललीला, राधाकृष्ण प्रेम प्रसंग, रूप-सौंदर्य आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, कुछ फुटकल पद ही उपलब्ध हो पाते हैं, जो 100 से कुछ अधिक हैं। कृष्णदास के पदों की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है ।

उक्त कवियों के अतिरिक्त अष्टछाप के कृष्णभक्त कवियों में कुंभनदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास भी अपनी कवि प्रतिभा और कलात्मक, सरस काव्य रचना के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।

अन्य कवि

मीराबाई (1504-1558-63 के बीच)

मीरा का जन्म 'मेड़ता' के निकट 'कुड़की' गाँव में राठौर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था । इस शाखा के मूल पुरुष राव दूदा थे । मीरा उन्हीं के पुत्र रत्नसिंह के घर पैदा हुईं । मीरा जब दो वर्ष की थीं, तभी उनकी माता का देहांत हो गया । उनके पिता सदैव युद्धरत रहने के कारण पुत्री के पालन-पोषण में असमर्थ थे । अतः राव दूदा मीरा को अपने पास मेड़ता ले आए । राव दूदा के सान्निध्य में रहकर मीरा पलने लगीं और उनसे वैष्णव भक्ति का प्रभाव भी ग्रहण करने लगीं । मीरा के हृदय में गिरिधर गोपाल के प्रति अनन्य आस्था का जन्म उन्हीं दिनों हुआ ।

सन् 1516 ई० में मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ, किंतु सात वर्ष पश्चात ही भोजराज का देहांत हो गया । मीरा का अंतर्मन व्यथा से भर उठा । बचपन में मिले

संस्कार रूप में कृष्णानुराग के अतिरिक्त अब उनका कोई संबल न था । वे स्वयं को अजर-अमर स्वामी कृष्ण की चिरसुहागिनी मानने लगीं ।

जग सुहाग मिथ्या रे सजनी हांवा हीं मिट जासी
बरन करयां हरि अविनाशी म्हारो काल-व्याल न खासी ।

मीरा तथाकथित लौकिक बंधनों से मुक्त हो गई और लोक-लाज छोड़कर निश्चिंत भाव से साधुसंगति एवं भक्ति भावना में लीन हो गईं । राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात उनके उत्तराधिकारी विक्रमसिंह के लिए मीरा का यह आचरण असह्य था । उसने मीरा को अनेक यातनाएँ दीं, पर मीरा अपने मार्ग पर अडिग रहीं । वे पुष्कर यात्रा करती हुई वृंदावन गईं, जहाँ उनकी भक्तिधारा मधुरोपासना के रस में निमज्जित हुई । कुछ समय बाद वे वृंदावन छोड़कर द्वारका चली गईं और वहीं रणछोड़ जी के मंदिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र भाव से भजन-कीर्तन करते हुए शेष जीवन व्यतीत किया । मीराबाई के पद 'मीराबाई की पदावली' नाम से प्रकाशित हैं ।

मीराबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छ्वास का साकार रूप है । व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्छल अभिव्यक्ति पाती है । उनकी वृत्ति एकांततः प्रेम-माधुरी में रमी है । अपने आराध्य 'गिरधर गोपाल' की विलक्षण रूप छटा के प्रति उनकी अनन्य आसक्ति अनेक भाव धाराओं में फूट पड़ी है । मीरा के काव्य का प्रमुख रस वियोग शृंगार है । उनकी विरह भावना का कोई ओर-छोर नहीं है । प्रेमोन्मादिनी मीरा का एक-एक पद उनके हृदय की भावुकता का परिचायक है ।

मीरा की कविताओं की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है । उनके पदों में गुजराती भाषा का भी विशेष पुट है । खड़ी बोली और पंजाबी का भी उस पर प्रभाव है । उनके पद विभिन्न राग-रागिनियों में आबद्ध हैं । संगीत और छंद विधान की दृष्टि से उनका काव्य अत्यंत उच्च कोटि का है ।

रसखान (1548-1628)

ये विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे । ये जन्म से मुसलमान थे । कृष्णभक्त कवियों में इनका स्थान अप्रतिम है । इनकी भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडंबरमुक्त है । इनकी दो छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हैं - 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' । प्रेमवाटिका दोहे में है तथा सुजान रसखान कवित्त-सवैयों में । रसखान ने अन्य कृष्णभक्तों की तरह 'गीतकाव्य' का सहारा न लेकर कवित्त-सवैयों में अपने उत्कट कृष्ण प्रेम की व्यंजना की है । सच्चे प्रेम से परिपूर्ण इनके सवैये अत्यंत प्रसिद्ध हैं -

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन ।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब के डारन॥

कृष्णोपासक भक्त कवियों की परंपरा यहीं समाप्त नहीं होती । स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, हरिरामव्यास सुखदास, लालचदास, नरोत्तम दास, अलबेली अली, भगवत रसिक आदि अनेक पहुँचे हुए भक्त कवि हो गए हैं, जिनकी रचनाएँ उच्च कोटि की हैं ।

भक्ति काल में भक्ति की प्रमुख धाराओं और प्रवाहों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवि थे जो राजदरबारों से जुड़े हुए थे । नरहरि और गंग ऐसे ही कवियों में थे । रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) अकबर दरबार के नवरत्नों में से एक थे । वे दरबार में रहकर भी दरबारी काव्य परंपरा से अलग लोकजागरण की चेतना के प्रमुख कवि हैं ।

जिस प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी की क्षेत्रीय भाषाओं में ब्रजभाषा, अवधी और राजस्थानी की रचनाओं से हिंदी साहित्य का गौरव बढ़ा है, उसी प्रकार मैथिली, भोजपुरी की रचनाओं ने भी उसका मान बढ़ाया है । भाषा की सफाई और भावों की मिठास के लिए बिहार के कंसनारायण, गजसिंह, गोविंद ठाकुर, मधुसूदन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इनकी भाषा प्रांजल और भाव सौष्ठव की दृष्टि से सराहनीय है । सोलहवीं शती में सविता भोजपुरी के प्रथम कवि के रूप में उपस्थित हैं, जबकि सोन और हेम ने ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं । सोन की कुछ रचनाएँ अवधी भाषा में भी हैं । इन कवियों की रचनाओं में अधिकतर शृंगार विषयक और भक्तिमूलक प्रसंग हैं । भक्तिमूलक रचनाओं में भगवान कृष्ण और शिव के अतिरिक्त भगवती के प्रति भी श्रद्धा निवेदन में है ।

सत्रहवीं शती के बिहारी कवियों की रचनाओं में शृंगार रस की रचनाएँ कम और देवस्तुति संबंधी भक्ति की और आध्यात्मिक विचारों की उपदेशात्मक कविताएँ अधिक हैं । भक्ति की रचनाओं में भगवान कृष्ण, शिव और दुर्गा के अतिरिक्त भगवान के निर्गुण स्वरूप के प्रति भी भक्ति भाव निवेदित हैं । इस काल में वीर रस के एकमात्र बिहारी कवि 'कृष्ण' हैं । इनकी भाषा में महाकवि भूषण की शैली की झलक मिलती है । भाषा और भाव की दृष्टि से इस शती के बिहारी कवियों में दलेलसिंह, धरणीदास, प्रबलशाह, मंगनीराम, महिनाथ ठाकुर, लोचन, दरिया साहब, हलधरदास और धरणीधर के नाम उल्लेखनीय हैं । कृष्ण और लोचन कवि की रचनाएँ ब्रजभाषा में भी हैं । ब्रजभाषा के अतिरिक्त भोजपुरी में रचना करनेवालों में धरणीदास और रामचरणदास निर्गुण संत मत के कवि हैं । रामचरण दास प्रेममार्गी है । दरिया साहब और धरणीदास से ही बिहार में निर्गुणवादी संत संप्रदाय का प्रवर्तन होता है । दोनों ने अपने-अपने नाम से नए पंथों का प्रवर्तन किया । इस युग में गोविंद, देवानंद और रामदास नाटककार हैं; भगवान मिश्र एक गद्यकार हैं तथा प्रद्युम्न दास अनुवादक हैं ।

❑❑❑

जा सकती है । इस कोटि के कवियों में केशवदास, चिंतामणि, सेनापति, मतिराम, भूषण, देव, भिखारीदास, पद्माकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

आचार्य केशवदास (1555-1617)

मध्य प्रदेश में रीवां के निकट बेतवा नदी के किनारे बसा ओरछा इनकी जन्मस्थली है । ओरछा के अधिपति महाराज इंद्रजीत सिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे । इनके द्वारा रचित सात ग्रंथ मिलते हैं - 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रिका', 'वीरसिंहचरित्र', 'विज्ञानगीता', 'जहाँगीर जसचंद्रिका' तथा 'रतनबावनी' ।

केशवदास काल की दृष्टि से भक्ति काल के हैं लेकिन प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकाल के । इस प्रकार केशव भक्तिकाल और रीतिकाल की संधि पर खड़े दिखाई देते हैं । केशवदास का उल्लेख प्राय: रामभक्ति शाखा के प्रसंग में किया जाता है, पर उन्होंने रीतिकालीन कविता के लिए एक विशेष मानसिक वातावरण तैयार करने में अहम भूमिका निभाई । वे रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं । उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित काव्यांगों पर विचार किया । रीतिग्रंथ पहले भी लिखे गए थे पर व्यवस्थित और सर्वांगपूर्ण प्रस्तुतीकरण का श्रेय केशव को ही है । केशव की अलंकार संबंधी कल्पना अद्भुत है । उनकी 'कविप्रिया' ने परवर्ती काव्य परंपरा को काफ़ी प्रभावित किया । वे सभी काव्य रूढ़ियाँ जिनका परिपालन संस्कृत काव्य में हुआ करता था, केशव ने उन्हें कविता में कहने का साहस दिखाया । केशव का काव्य विवेचन संस्कृत के काव्यशास्त्र के आचार्यों, खासकर रसवादी एवं अलंकारवादी आचार्यों के अनुकरण के कारण मौलिक नहीं माना गया ।

चिंतामणि (1609-1680-85 के बीच)

चिंतामणि कानपुर (उत्तर प्रदेश) के निकट तिकवाँपुर के निवासी थे । ये शाहजी भोंसले, शाहजहाँ और दाराशिकोह के आश्रय में रहे । ये आचार्यकवि थे । इन्होंने 'रसविलास', 'शृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु', 'कृष्णचरित', 'काव्यविवेक' आदि ग्रंथ रचे । आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियों से ये महत्त्वपूर्ण माने गए हैं । मूलत: ये रसवादी कवि हैं । इनकी भाषा शैली सरल किंतु परिमार्जित है ।

सेनापति (1589 -17वीं शती उत्तरार्ध)

सेनापति का जन्म-स्थान अनूपशहर (उत्तर प्रदेश) माना जाता है । रीतिकालीन कवियों में सेनापति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनकी दो रचनाएँ हैं 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' प्रसिद्ध हैं । कवित्तरत्नाकर में भक्तिभाव के छंद हैं और काव्यकल्पद्रुम का विषय अलंकार शास्त्र से संबंधित है ।

सेनापति की मौलिकता उनके ऋतुवर्णन में देखने को मिलती है । इनकी प्रवृत्ति अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह प्रकृति को उद्दीपन के रूप में चित्रित करने में नहीं, बल्कि प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को अत्यंत सहज और सूक्ष्म दृष्टि से देखने में है । प्रत्येक ऋतु में उठनेवाले लोकमानस के सहज भाव इनके ऋतुवर्णन में तरंगित हो उठे हैं ।

कवि की यह सहजता उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा में भी देखी जा सकती है । ब्रजभाषा के प्रचलित साहित्यिक तथा मौखिक रूप के प्रयोग की सहजता से इनकी रचनाएँ अद्वितीय आकर्षण का केंद्र बन गई हैं ।

मतिराम (1617-1693)

मतिराम ब्रजभाषा के प्रतिभासम्पन्न उत्कृष्ट कवि थे । ये रीतिकाल के विशिष्टांग (रस-अलंकार-छंद) निरूपक आचार्यों में प्रमुख थे । इन्होंने शृंगाररस को रस शिरोमणि माना था । अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह ये भी अनेक राजाओं के आश्रय में रहे । सम्राट जहाँगीर, बूँदी नरेश राव भावसिंह हाड़ा, कुमायूँ नरेश ज्ञानचंद, बुंदेलखंड स्थित श्रीनगर नरेश स्वरूप सिंह बुंदेला आदि के आश्रय में रहने का इन्हें अवसर मिला था । प्रसिद्ध कवि भूषण इनके भाई थे । इनके द्वारा रचित आठ ग्रंथ बताए जाते हैं - 'फूलमंजरी', 'लक्षण शृंगार', 'साहित्यसार', 'रसराज', 'ललितललाम', 'सतसई', 'अलंकार पंचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी'।

मतिराम के काव्य में भाव और भाषा दोनों की सहजता और सरलता इन्हें अन्य रीतिबद्ध कवियों से अलग सिद्ध करती है । काव्य की रसमयता और लालित्य के कारण इनकी लोकप्रियता भी बहुत है। रीतिकालीन परिपाटी का पालन करते हुए भी युगीन रूढ़ियों से मुक्त रहना मतिराम की विशेषता है ।

भूषण (1613-1715)

भूषण ने युगीन प्रवृत्ति से अलग वीररस को अपनी कविता में प्रमुखता दी । वे शिवाजी और छत्रसाल के आश्रय में रहे । कवि भूषण अपने युग के दो प्रसिद्ध कवियों चिंतामणि तथा मतिराम के सगे भाई के रूप में प्रसिद्ध हैं । भूषण के ग्रंथ हैं - 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' ।

भूषण की तरह अन्य कवि भी वीरता की कविताएँ लिखते थे पर वे भूषण की तरह प्रभावशाली और लोकप्रिय नहीं हो सके । भूषण की कविता ऐतिहासिक तथ्यों से प्रामाणिक है । कोरा तथ्य या कोरा वाग्वैचित्र्य कविता को उत्कृष्ट नहीं बनाता । भूषण के काव्य में तथ्य, भाव और भाषा का सुंदर संयोग है।

चूँकि भूषण ओज के कवि हैं, अतः कविता का आवेग से भरा होना स्वाभाविक है । यह आवेग उन्हें सामाजिक जीवन से मिला । युद्ध और आक्रमण तत्कालीन युग की सच्चाई थी इसलिए यह भाव भूषण की कविता में ध्वनित होता है ।

भूषण ने रीतिकाल की परंपरा में एक अलंकार ग्रंथ 'शिवराजभूषण' लिखा है, लेकिन वह काव्यांग निरूपण की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना विषयवस्तु और भाव के कारण । अपने युग की युद्ध और आक्रमण जैसी परिस्थितियाँ ही उनके अनुभव जगत का आधार हैं । शिवाजी की वीरता की प्रशंसा करते हुए उनके छंद में आवेग और अनुभूति की एकता दिखाई देती है ।

देव (1673-1767)

देव रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं । उत्तर प्रदेश के इटावा में उत्पन्न देव को अपने जीवनकाल में अनेक आश्रयदाता मिले लेकिन संतुष्टि कहीं नहीं मिली । रीतिकाव्य जिन कवियों के कृतित्व के कारण प्रतिष्ठित हुआ उनमें कवि देव विशेषतः उल्लेखनीय हैं । इनके द्वारा रचित बहत्तर ग्रंथ बताए जाते हैं जिनमें 'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'प्रेमतरंग', 'देवचरित्र', 'रसविलास', 'प्रेमचंद्रिका', 'सुजानविनोद', 'काव्यरसायन' आदि प्रमुख हैं ।

इनकी काव्य भूमि अत्यंत व्यापक है । इनके काव्य में जीवन को समग्र रूप से देखने की अंतर्दृष्टि

मिलती है । हालाँकि इन्होंने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति विषयक रचनाएँ भी की हैं, लेकिन सफलता शृंगारिक काव्यों में ही मिली है । शृंगारिक काव्यों में शृंगार के स्थूल चित्र मात्र नहीं हैं, बल्कि प्रेम की उदात्त भूमिका की झलक भी मिलती है ।

परिष्कृत सौंदर्यबोध और मौलिक उद्भावना की दृष्टि से अन्य रीतिकालीन कवियों में देव सबसे समृद्ध हैं । देव ने भाषा के सौष्ठव, समृद्धि और अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया है ।

भिखारीदास

भिखारीदास का महत्त्व कवि और आचार्य दोनों रूपों में है । इनका जन्म उत्तर प्रदेश के जिला प्रतापगढ़ स्थित त्योंगा नामक ग्राम में हुआ था । कुछ लोगों का मत है इनका देहांत भभुआ (बिहार) मेंहुआ था । इनके ग्रंथों में प्रमुख हैं - 'रससारांश', 'काव्यनिर्णय', 'शृंगारनिर्णय' आदि ।

हालाँकि भिखारीदास में आचार्यत्व और कवित्व दोनों प्रकार की प्रतिभा थी, फिर भी ये कवि-कर्म में अधिक सफल रहे । इन्होंने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है तथा शृंगार वर्णन में मर्यादा का ध्यान रखा है ।

पद्माकर (1753 - 1833)

इनका जन्म-स्थान सागर (मध्य प्रदेश) है । ये रीतिकाल के अत्यंत प्रसिद्ध, लोकप्रिय एवं अंतिम श्रेष्ठ कवि हैं। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं - 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोधपचासा', 'गंगा लहरी' आदि ।

इनमें 'जगद्विनोद' लक्षण ग्रंथ है तथा 'पद्माभरण' अलंकार ग्रंथ । स्पष्ट लक्षण और सरस उदाहरण के कारण इनके ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुए । सुगरा, सितारा, जयपुर, ग्वालियर के दरबारों में पद्माकर बहुत सम्मानित किए गए ।

पद्माकर की कविता आनंद और उल्लास का खजाना है । शृंगारिक भाव की व्यंजना में मुक्तता और खुलापन है । ब्रजमंडल के फाग के दृश्य का उनके द्वारा अद्भुत वर्णन हुआ है । यथा -

फागु की भीर, अभीरनि में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी ।
छीनि पितंबर कम्मर तै सु विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसकाय 'लला फिर आइयो खेलन होरी' ।।

पद्माकर की अभिव्यक्ति में नाद और चित्र का संयोग है । कल्पना द्वारा इन्होंने रूप, रस, गंध, स्वाद और घ्राण संवेदना को कविता में मूर्त रूप में रख दिया है ।

रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध काव्यधारा के कवि मानो रस, अलंकार, ध्वनि, नायिका-भेद आदि के उदाहरण के लिए कविता लिखते थे, जो रीति में बँधकर भी चल रहे थे और उससे कुछ मुक्त होकर भी । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिसिद्ध कवियों के बारे में अपनी राय देते हुए कहा है कि ''जिन्होंने रीति की सारी परंपरा सिद्ध

कर ली थी अर्थात जिन्होंने रचनाएँ रीति की बँधी परिपाटी के अनुकूल ही की हैं पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत न करके स्वतंत्र रूप से अपनी रचनाएँ की हैं। इस प्रकार के कवियों को जो रीतिविरुद्ध नहीं हैं और लक्षण ग्रंथ से ऐसे नहीं बँधे हैं कि तिलभर भी उनसे हट न सकें, भले ही वे रीति की परंपरा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हों, रीतिसिद्ध कहना चाहिए ।''

रीतिसिद्ध कवियों की इच्छा आचार्य या कवि शिक्षक बनने की नहीं थी । इनमें स्वानुभूति की प्रधानता तो दिखाई देती है लेकिन काव्य कौशल के प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने इनकी शैली को अलंकृत बना दिया है।

रीतिसिद्ध कवि संस्कृत और प्राकृत की मुक्तक परंपरा से प्रभावित हैं । इनकी भाषा विद्यापति, चंडीदास, सूरदास, रहीम, तुलसीदास आदि की भाषा से प्रेरित है । इन पर फारसी काव्य का प्रभाव भी देखा जा सकता है । इनकी कविताओं में नारी का रूपाकर्षण प्रमुख है । फिर भी इनके काव्य का क्षेत्र रीतिबद्ध की अपेक्षा विस्तृत है । इनमें शृंगार के साथ-साथ भक्ति, प्रशस्ति, नीति, ज्ञान, वैराग्य और प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन रूपों का वर्णन भी विद्यमान है । इस वर्ग के कवियों में बिहारी का नाम सबसे ऊपर है ।

बिहारी (1595 -1663)

बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ था । अपने पिता के गुरु नरहरिदास के यहाँ बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत के काव्यग्रंथों का अध्ययन किया था । इन्होंने फारसी काव्य का अभ्यास भी किया था। ये शाहजहाँ के कृपापात्र थे तथा जोधपुर, बूँदी आदि अनेक रियासतों से भी इन्हें वृत्ति मिलती थी ।

मुक्तक परंपरा में बिहारी बेजोड़ हैं । इनके यश का आधार इनका एकमात्र ग्रंथ सतसई है । सतसई दोहों का संग्रह है, जिसमें बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि का ध्यान रखा है । सतसई में आलंकारिक चमत्कार और भाव सौंदर्य दोनों ही हैं तथा इसे मुक्तक काव्य की प्रतिनिधि रचना के रूप में महत्त्व प्राप्त है । सतसई के द्वारा इन्होंने जो ख्याति अर्जित की वह हिंदी का अन्य कवि नहीं कर सका । इनकी यह ख्याति निराधार नहीं है । आचार्य शुक्ल ने बिहारी के दोहों को 'रस के छोटे-छोटे छींटे' कहा है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बिहारी का काव्य मुक्तक काव्य की कसौटी पर खरा उतरता है । इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी अनगिनत टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं ।

बिहारी ने संयोग शृंगार का वर्णन प्रमुखता से किया है । इसके अतिरिक्त इनकी सतसई में भक्ति, नीति, प्रशस्ति आदि विषयक दोहे भी हैं ।

बिहारी की काव्यभाषा शुद्ध ब्रजभाषा है । इनकी भाषा व्याकरण से अनुशासित है और विषय के अनुरूप चुस्त है । भाषा के व्यवस्थित प्रयोग और परिमार्जित शैली के कारण इसमें साहित्यिक दोष ढूँढ़ निकालना मुश्किल है । इनके दोहों में प्रयुक्त अलंकार सौंदर्य को दूना बढ़ा देते हैं । भाषा ने [illegible] चमत्कार उत्पन्न किया है लेकिन अनुभूति की उपेक्षा कर के नहीं । दोनों का संतुलन ही बिहारी को अन्य कवियों से अलग सिद्ध करता है ।

रीतिमुक्त काव्य

रीतिमुक्त काव्य की प्रकृति रीतिबद्ध काव्य से भिन्न थी । रीतिबद्ध कवियों का आधार प्राचीन काव्य प्रणाली और शास्त्रीयता थी । रीतिमुक्त कवियों ने शास्त्रीयता को अस्वीकार कर दिया तथा अनुभूति के आवेग में रचनाएँ कीं । ये वैयक्तिकता के आग्रही थे, अतः दरबारी मर्यादा में बँधकर रचना करना इनकी प्रकृति नहीं थी । इनके प्रेम का स्वरूप लौकिक था पर वह इतना गहन और व्यापक था कि अलौकिक ऊँचाइयों को स्पर्श करता था । इनके काव्य में एकांगी प्रेम की प्रधानता है । रीतिबद्ध कवियों के स्थूल और मांसल प्रेम के स्थान पर अंतर्मुखी प्रेम रीतिमुक्त कवियों को अभीष्ट था । इनके काव्य में संयोग की अपेक्षा विरह वर्णन की अधिकता है । हिंदी कविता में स्वच्छंद चेतना का प्रथम उन्मेष इनके काव्य में हुआ, अतः इन्हें बीसवीं शती के स्वच्छंदतावादी कवियों का पूर्वज कहा जा सकता है । इस धारा के प्रमुख कवि हैं - घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव । इनमें घनानंद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।

घनानंद (1658-1739)

घनानंद ने अपने काव्य में आदि से अंत तक अपने और सुजान के संबंध को ही दुहराया है । कहा जाता है सुजान नामक नर्तकी से इन्हें प्रेम था । यह जनश्रुति तब सत्य प्रतीत होती है जब अपनी रचनाओं में वे सुजान का नाम रटते और उसके लिए तड़पते दिखाई देते हैं । घनानंद के प्रमुख ग्रंथ हैं - 'सुजान सागर', 'विरह लीला', 'रसकेलिवल्ली' और 'कृपाकांड' ।

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रायः सभी गुण घनानंद की काव्य शैली में मिलते हैं । जैसे - भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, भावों की वैयक्तिकता, रहस्यात्मकता, मार्मिकता, स्वच्छंदता आदि ।

अपने जीवन और कविता का अर्थ बताते हुए घनानंद कहते हैं -

> यो घन आनंद छावत भावत जान सजीवन और तें आवत ।
> लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरो कवित्त बनावत ।।

तात्पर्य यह कि घनानंद का काव्य उनके जीवन की सच्ची अनुभूतियों का सहज-स्वच्छंद प्रकाशन है । घनानंद की भाषा प्रांजल ब्रजभाषा का उत्कृष्ट उदाहरण है । मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा कवि ने उसे जीवन के और अधिक निकट लाने का सफल प्रयास किया है ।

आलम

आलम का काव्य भावप्रधान है । घनानंद की भाँति इनका वियोग भी मार्मिक और आंतरिक है । इनके काव्य में अभिलाषा की प्रधानता है, इसलिए प्रिय को पाकर भी तृप्ति नहीं मिलती । आलम ने रीतिबद्ध परंपरा से मुक्त होकर मन की उलझन और व्यथा की अनेक दशाओं का चित्रण किया है । उनके काव्य में नैराश्य, मार्मिकता, व्यथा, मूकता आदि विशेषताएँ बार-बार अभिव्यक्त हुई हैं ।

बोधा

घनानंद की तरह बोधा ने भी प्रेम में विरह का दंश भोगा था । यह बात उनकी कविता में बार-बार प्रकट हुई है । 'विरहबारीश' और 'इश्कनामा' में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है ।

बोधा के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है किसी बात को बेधड़क और निःसंकोच कहना। उनकी कविता में बनावटीपन नहीं है।

बोधा के काव्य में प्रेम की पीड़ा के दो रंग मिलते हैं। एक पीड़ा प्रेम की कठिन राह पर चलने की है - ''यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार को धार पे धावनो है।'' तो दूसरी, व्याकुलता और धैर्य के द्वंद्व को किसी से न कह पाने की - ''कहते न बनै सहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै।''

ठाकुर

ठाकुर सच्ची उमंग के कवि थे। प्रेम के साथ ही ठाकुर ने लोक जीवन के अन्य पक्षों पर भी अपने हार्दिक उल्लास की अभिव्यक्ति की है। उनकी जीवन दृष्टि में मन की मौज और स्वाभिमान की सुंदर झलक मिलती है - ''ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के/जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।''

उनकी मस्ती और स्वच्छंद मूल्यवत्ता का प्रमाण उनकी ये पंक्तियाँ हैं -

विधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव।''

ठाकुर व्यक्ति-स्वतंत्रता के हिमायती कवि थे। वे कवि परंपरा से चली आती हुई उपमाओं के सहारे कविता लिखने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि उपमानों का प्रयोग करना कविता नहीं है। लोग सभा के बीच कविता को ढेले की तरह गिराते हैं जैसे कविता करना खेल करना हो - ''ढेल सा बनाय आय मेलत सभा बीच/लोगन कवित कीनो खेल करि जानो है।''

इस काल में जब धीरे-धीरे भक्ति में धार्मिकता का और लोकोन्मुखता का आवेश कम होने लगा तो कवियों ने राधा-कृष्ण के बहाने आश्रयदाताओं की शृंगार लीला का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया। शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है। यद्यपि रीति निरूपण की प्रवृत्ति के समान इस प्रवृत्ति के भीतर स्वतंत्र अंतःप्रवृत्तियाँ नहीं हैं तथापि विलासिता पूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति और नारी के प्रति सामंती दृष्टि के होते हुए भी इसमें गार्हस्थ्य प्रेम की व्यापक स्वीकृति देखने को मिलती है।

रीतिकाल में उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अनेक गौण प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। इस काल में वीरता, भक्ति, नीति, वैराग्य आदि भावों के अनेक अच्छे कवि हुए हैं।

रीतिकाल के वीर काव्य में कवियों ने जातीय हित को प्रमुखता दी है। हालाँकि आदिकाल और रीतिकाल दोनों युगों में सामंतों की प्रशस्ति में वीर काव्य की रचना हुई है लेकिन कथ्य की ऐतिहासिकता, प्रामाणिकता, भाव व्यंजना की निपुणता, ध्वन्यात्मकता और भाषा की शुद्धता की दृष्टि से रीतिकाल का वीरकाव्य आदिकालीन वीरकाव्य से श्रेष्ठ सिद्ध होता है। रीतिकालीन वीर कवियों में मानकवि, भूषण, सूदन, जोधराज आदि प्रमुख हैं।

रीतिकालीन कवियों के लिए भक्ति धार्मिकता की परिचायक नहीं थी, वह दरबारी वातावरण के बाहर विषय-वासनाजन्य दुखों से आकुल मन के लिए शरणभूमि थी। सामान्य रूप से विष्णु के राम और

कृष्ण–इन दो अवतारों में विशेष आस्था रखते हुए भी ये कवि गणेश, शिव और शक्ति में वैसी ही श्रद्धा रखते थे । इसलिए कहा जा सकता है कि ये किसी विशिष्ट संप्रदाय के अनुयायी नहीं थे । ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के रूप में आज साधारण आस्तिक हिंदुओं में देवी–देवताओं के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति का भाव रहता है, वही इनमें भी था ।

भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन की शरणभूमि थी तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व के विरेचन के परिणामस्वरूप शांति का आधार थी । इसीलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छंदों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्रायः देखने को मिलती है । इस प्रकार वृंद, गिरिधर की नीतिपरक रचनाएँ काफी लोकप्रिय रहीं । गौण प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति शृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन की परिचायक है जबकि भक्ति और नीति की प्रवृत्तियाँ उससे निवृत्ति की ।

रीतिकाल की भाषा मुख्य रूप से ब्रजभाषा थी । कुछ कवियों ने अवधी को भी अपनाया था । इस काल की काव्यभाषा वातावरण के अनुसार फारसी से भी प्रभावित थी । कहने को इस काल में प्रबंधकाव्य भी लिखे गए जो महज आदिकाल की परंपरा का निर्वाह है । इस युग में प्रधानता मुक्तक की ही रही । कवित्त, सवैया, दोहा, कुंडलिया आदि इस काल के बहुप्रयुक्त छंद थे । इस काल में अलंकारों की भी प्रधानता रही । ब्रजभाषा का रूप यद्यपि सभी कवियों में व्यवस्थित नहीं मिलता लेकिन घनानंद, मतिराम और पद्माकर में यह पर्याप्त व्यवस्थित है । एक तरफ उपयुक्त शब्दों के चयन में देव बेजोड़ कवि ठहरते हैं तो दूसरी तरफ ठाकुर की कविता में कहावतों की प्रचुरता है ।

17वीं शती के उत्तरार्ध से 19वीं शती के पूर्वार्ध तक के कालखंड में बिहारी साहित्यकारों की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति रही । इनकी रचनाओं का बल प्राप्त कर हिंदी गद्यरूप की ओर अग्रसर होती चली गई । इस कार्य में मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी के साथ-साथ खड़ी बोली और भोजपुरी के रचनाकारों का भी उल्लेखनीय योगदान है । ये भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती दीख पड़ती हैं । अधिकांश कवियों की भाषा में हिंदी की विविध बोलियों के शब्दों और अन्य भाषिक तत्त्वों के मेल द्वारा आगे की रचना-भाषा का आधार निर्मित हो रहा था । इन कवियों की रचनाओं में शृंगार और भक्ति पक्ष की प्रधानता है । निर्गुणोपासना और प्रेममार्ग की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में हैं ।

भाषा की स्वच्छता, भाव की मधुरता और छंद प्रवाह में सुगमता की दृष्टि से 17वीं शती के ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली और मैथिली के उल्लेखनीय बिहारी कवि इस प्रकार हैं –

ब्रजभाषा – चंद्रमौलि मिश्र ('उदवंत प्रकाश'), दिनेश द्विवेदी ('रस रहस्य' और 'नखशिख'), राधाकृष्ण ('रागरत्नाकर'), वंशमणि ('रस चंद्रिका'), और हरिचरण दास (रसिकप्रिया, कवि प्रिया, बिहारी सतसई तथा भाषा भूषण की टीकाएँ) ।

अवधी – कुंजनदास, जगन्नाथ, जयरामदास (छंद विचार), तुलाराम मिश्र, बेनीराम, रामरहस्य साहब और महेश्वरदास ।

खड़ी बोली – ईशकवि, गुमानी, चंद्रकवि, जॉन क्रिश्चियन, ब्रह्मदेव नारायण 'ब्रह्म', वृंदावन

(छंदशतक) और साहब रामदास ।

मैथिली - अनिरुद्ध, कुलपति, केशव, चक्रपाणि, जयानंद, नंदीपति, निधि उपाध्याय, भंजन, भवेश, मानबोध (हरिवंश का अनुवाद), रमापति उपाध्याय (रुक्मिणी परिणय), रामेश्वर, लाल, वेणीदत्त, ब्रजनाथ और श्रीकांत (कृष्ण-जन्म) ।

इस कालखंड के अंतिम चरण में बिहार के सिद्धपुरुष लक्ष्मीनाथ परमहंस और हिंदी की आधुनिक गद्य शैली के निर्माताओं में अन्यतम पं० सदल मिश्र ('नासिकेतोपाख्यान') की उपस्थिति विशेष महत्त्व की है । इस युग में उत्तर बिहार के महात्मा लक्ष्मीनाथ गोसाई बड़े भक्त कवि हुए ।

इस काल में मगही में रचित कुछ गीतों की भी चर्चा है जिसके लिए गया के पाठकबिगहा निवासी हरिनाथ पाठक का नाम उल्लेखनीय है ।

इस काल में आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों के बीज भी कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं । रस की दृष्टि से भक्ति अथवा शांति, शृंगार एवं वीर रसों की प्रधानता है । भक्ति एवं शृंगार रस की रचनाओं से यह युग भरा पड़ा है । वीर रस की रचनाएँ मुख्य रूप से अलिराज, कमलाधर मिश्र, रामकवि तथा शिवकलि राम की ही मिलती हैं । प्रकृति के चितेरों में नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह, रामसफल राय, यज्ञदत्त त्रिपाठी, चंदेश्वरी राय, परमानंद दास तथा सोहनलाल का नाम आता है ।

इस काल खंड में गद्य रचना की प्रवृत्ति का उदय एक प्रमुख घटना है । बिहार के साहित्यकारों में पं० चंदा झा को छोड़कर अधिकतर लोगों ने खड़ी बोली में गद्य रचनाएँ की हैं । उनकी गद्य रचना मैथिली में है । भिन्नक मिश्र, अयोध्या प्रसाद मिश्र, हरनाथ प्रसाद खत्री, नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह, भगवान प्रसाद 'रूपकला', संसारनाथ पाठक तथा गणपति सिंह इस समय के उल्लेखनीय गद्यकार हैं ।

इस काल के गद्यकारों ने नाटक को भी प्रमुखता दी । अन्य विधाओं में जीवनी साहित्य के अंतर्गत रामलोचन मिश्र कृत 'आत्मजीवनी' का तथा उपन्यास के अंतर्गत भिन्नक मिश्र रचित 'विद्यावती' का उल्लेख किया जा सकता है । काव्य, भाषा, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, संगीत, गणित, नीति, राजनीति, ज्योतिष, आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रों पर भी लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई है ।

19वीं शती पूर्वार्द्ध के महत्त्वपूर्ण बिहारी रचनाकारों में भगवान प्रसाद 'रूपकला', चंदा झा, युगलानन्य शरण जी 'हेमलता', लक्ष्मीसखी तथा सोहनलाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । श्री रूपकला अखिल भारतीय हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन के संस्थापक एक प्रमुख संत कवि थे । इन्होंने भोजपुरी और अन्य भाषाओं में भी बहुत मार्मिक रचनाएँ की हैं । चंदा झा आधुनिक मैथिली साहित्य के जन्मदाता माने गए हैं और अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण मिथिला में विद्यापति की तरह समादृत हैं । युगलानन्य शरण जी 'हेमलता' के संबंध में कहा जाता है कि इन्होंने विभिन्न विषयों के चौरासी ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें पचहत्तर इनके आश्रम में सुरक्षित हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा में भी इनके अधिकांश ग्रंथ सुरक्षित हैं । लक्ष्मीसखी ने 'सखी संप्रदाय' को अपनी रचनाओं का बल दिया । सोहनलाल इस युग के एक प्रमुख रचनाकार थे जिनके संबंध में अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है कि ''सोहनलाल हिंदी की 'मुंशी शैली' के जनक थे ।''

❑❑❑